

बरसात के दिन नर्क से कम नहीं थे। गलियों में कीचड़ भर जाता था, जिससे आना- जाना कठिन हो जाता था। कीचड़ में सूअरों की गंदगी भरी रहती थी, जो बारिश रुकने के बाद गंधियाने लगती थी। मक्खी-मच्छर तो ऐसे पनपते थे जैसे टिड्डी दल।

घर से बाहर निकलना दूभर हो जाता था। हाथ-पैर गंदगी से भर जाते थे। पैर में खारवे हो जाते थे। पैर की उंगलियों के बीच की जगह लाल-लाल चकत्ते उभर जाते थे। उन खारवों में एक बार खुजली शुरू होती, तो फिर रुकना का नाम ही नहीं लेती थी।

महीनों रास्तों में कीचड़ और पानी भरा रहता था। पानी से निकलकर ही स्कूल जाना पड़ता था। हमारी बस्ती के इर्द गिर्द जोहड़ ज्यादा थे। उनका पानी गलियों में भर जाता था।

बस्ती में एक कुआँ था। चंदा इकट्ठा करके कुएँ को पक्का बना लिया गया था। कुएँ की जगत और मुंडेर काफी ऊँची थी। फिर भी बरसात के दिनों में कुएँ के पानी में लंबे लंबे कीड़े हो जाते थे। उस पानी को पीना मजबूरी थी। तगाओं के कुएँ से पानी लेने का हमें अधिकार नहीं था।

१९६२ के साल में खूब बारिश हुई थी। बस्ती में सभी के घर कच्ची मिट्टी से बने थे। कई दिन की लगातार बारिश ने मिट्टी के घरों पर कहर बरपा दिया था। हमारा घर जगह-जगह से टपकने लगा था। जहाँ टपकता वहीं एक खाली बर्तन रख देते थे। बर्तन में टन-टन की आवाज़ आने लगती थी। ऐसी रातें जाग-जागकर काटनी पड़ती थीं। हर वक़्त एक डर बना रहता था - कब कोई दीवार धसक जाए।